भारतीय परंपरागत जल संरक्षण प्रणालियां : जल संकट का उपाय

डॉ. विजय श्री सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जाधेपुर

शाध सारांश

भारत में जल संचय का कार्य सभ्यता के आरंभ से ही है। भारत में अनेक पारंपरिक जल संचय प्रणालियां है जिनका अपना वैज्ञानिक इतिहास और स्वरूप रहा है। प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों और ऐतिहासिक अवशेषों के साथ जो आज भी जीवंत है। हमारे प्राचीन तालाब, जलाशय, नाले, कुंडियां, कुएं आदि तमाम परंपरागत जल स्रोत सदियों से खरो है और आज भी प्रयोग में लायी जा रही है। वर्तमान में आवश्यकता केवल इनके रखरखाव, देखभाल और जीवंत बनाने की है ताकि जल संकट की समस्या से निदान पाया जा सके।

पृथ्वी पर मौजूद कुल जल का केवल 0.4 प्रतिशत ही पूरी दुनिया में हमारी जरूरतें पूरी करने क लिए उपलब्ध है। दुनिया की 14 प्रतिशत जनसंख्या के पास कुल जल संसाधनों का 53 प्रतिशत है। जबकि 86 प्रतिशत आबादी (भारत और चीन को मिलाकर) को 47 प्रतिशत वैश्विक जल संसाधन से ही काम चलाना पड़ता है। विश्व की 17 प्रतिशत आबादी भारत में रहती है, लेकिन केवल 4 प्रतिशत जल संसाधन उसके हिस्से में आते है। जीवन, आजीविका और परिस्थितिकी के लिए जल संसाधन हमेशा से आवश्यक है, आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है और खाद्य सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं ऊर्जा सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। हर वर्ष 4,000 अरब घन मीटर वर्षा (हिमपात समेत) के अनुमानों को देखते हुए विभिन्न उद्देश्यों के लिए केवल 1,123 अरब घन मीटर जल का इस्तेमाल किया जा सकता है। जिसमें से 61 प्रतिशत जल भूमि के ऊपर और बाकी भूमिगत जल है। स्थान और काल के अनुसार जल की उपलब्धता भी अलग

–अलग होती है। जैसे भारत मे 75 प्रतिशत वर्षा 4 महीनों में तथा सबसे अधिक वर्षा पूर्वोत्तर, सबसे कम राजस्थान में होती है। जल संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता वर्ष दर वर्ष घटती जा रही है और माना जा रहा है कि 2050 तक यह पानी की कमी वाला क्षेत्र बन जाएगा। आज भी ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, ब्रिटेन, बांग्लादेश और चीन जैसे देशों की तुलना में भारत के प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता कम है।[1]

देश में पानी की समस्या से निपटने के लिए हमें जल संरक्षण करना होगा। जल संरक्षण अर्थात् पानी की बर्बादी और प्रदूषण को रोकना। जल संरक्षण अनिवार्य आवश्यकता ह क्योंकि वर्षा जल हर समय उपलब्ध नहीं रहता। पानी का पर्याप्त संग्रहण व संरक्षण कर, जल संकट को समाप्त किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय सभ्यता में हमें अनेक ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जिसमें जल संग्रहण पर बल दिया जाता था।

सिंधु घाटी सभ्यता (3000–1500 ई.पू.) के महत्वपूर्ण स्थल धोलावीरा में मानसून के पानी को संचित करने वाले अनेक जलाशय थे। जल निकासी की पुख्ता व्यवस्था थी। इतिहासकारों का मानना है कि कुएं बनाने की कला संभवतः हड़प्पा के लोगों ने विकसित की। सिंधु घाटी सभ्यता वाले स्थलों के हाल के सर्वेक्षण से यह बात सामने आई कि हर तीसरे घर में कुआं था। यहां 700 से अधिक कूए पाये गये हैं। ई.पू. पहली शताब्दी में इलाहाबाद के निकट श्रगवेरपुरा में गंगा की बाढ़ के पानी को संचित करने की विकसित प्रणाली के संकेत मिले हैं। यहां 250 मीटर लंबा तालाब मिला है जो भारत के प्राचीनतम तालाबों में से एक है।[2]

जल संचय करने का वर्णन, जल संचय करके सिंचाई करना, उसमें कर छूट व दंड आदि बातों का विवरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि जलाशय, क्यारी व नालो बनाते समय यदि किसी के बीज बोये खेत का नुकसान हो जाए तो हानि के अनसार उसका मूल्य चुका देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति खेत, बाग–बगीचा और सीमा बंध आदि को एक दूसरे के बदले में नुकसान पहुंचाए तो उन्हें नुकसान का दुगुना दंड देना चाहिए। नए शिर से तालाब और सीमाबंध बनवाने वाले व्यक्ति पर पांच वर्ष तक सरकारी टैक्स न लगाया जाए। यदि वह जीर्णोद्धार कराये तो

चार वर्ष तक, यदि उनको बढ़ाए तो तीन वर्ष तक सरकारी टैक्स न लिया जाए। जिन तालाबों में नदी का पानी न आता हो और किसान रहट आदि लगाकर अपने खेतों, बगीचों और फुलवाडियो में से पानी देते हो उनकी उपज पर सरकार उतना ही कर लगाए जितने से उन लोगों को कोई कष्ट न हो। जिन किसानों के पास तालाब नहीं है, वे कीमत देकर (कुछ बंधी रकम), अपनी उपज का हिस्सा देकर या मालिक की आज्ञा से दूसरे तालाबों से पानी ले सकते हैं किंतु यह आवश्यक है कि तालाब और रहट की मरम्मत करते रहें और मरम्मत न करने पर जो नुकसान होगा उसका दुगुना जुर्म उन्हें भोगना होगा।[3]

भारत में जल संचय का कार्य सभ्यता के आरंभ से ही रहा है। भारत की पारंपरिक जल संचय की प्रणालियों का लंबा इतिहास रहा है, जो प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों और ऐतिहासिक अवशेषों के साथ आज भी जीवंत है। यहां परंपरागत जल संचय की अनेक प्रणालियां मौजूद हैं। राजस्थान में पानी सहेजने की एक तकनीक जोहड़ है। यह मिट्टी के छोटे डेम की तरह होते थे। वर्षा जल बहाव क्षेत्र में बांध बनाकर पानी को रोककर छोटे तालाब के रूप में एकत्र किया जाता है। राजस्थान जल संचय की इस परंपरागत तकनीक को वर्तमान में कुछ गैर सरकारी संगठनों ने पुनस्थापित किया है। इन जोहड़ के द्वारा वर्षा का पानी भूमि को रिचार्ज करता है और वहां की भूमि का जल संतुलन स्थिर रहता है। एक अन्य जल संचय उपाय कुंड और कुइयां है, जिसे सीमेंट या अन्य स्थानीय सामग्रियों से कुंड बनाया जाता है। इसकी संरचना तश्तरी जैसी होती है जिसके केंद्र में कुआं होता है। कुइयों का निर्माण किसी टंकी या होज के समीप रिसने वाले पानी को इकट्ठा करने के लिए किया जाता है। इनका मुंह सामान्यतः संकड़ा होता है। ताकि संचित पानी का वाष्पीकरण कम हो। राजस्थान के जैसलमेर जिले (जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर) में खाडीन नामक जल संरक्षण प्रणाली सदियों से दिखाई देती है। खाडीन जल संरक्षण तकनोक में पथरीले तटबंध से वर्षा जल बहता हुआ समीपस्थ घाटी में पहुंचता था तथा वहां की भूमि को नमी और उर्वरता प्रदान करता था। यह तकनीक ईसा पूर्व साढ़ चार हजार साल पहले इराक में पाई जाने वाली सिंचाई विधि से मेल खाती है।[4] अन्य जल संरक्षण पद्धतियों में टांका भी मुख्य है। यह गोलाकार या चौकोर होते हैं जिनमें वर्षा के जल को एकत्र किया जाता है। बावड़ी भी पुराने समय में निर्मित कुएं या तालाब है जिन

तक पहुंचने के लिए अनेक सीढ़ियां या मंजिले होती थी, जहां पानी इकट्ठा होता था। इनका निर्माण सूखे के दौरान पानी की आपूर्ति के लिए किया जाता था। बावड़ी का एक स्थानीय नाम झालरा भी है।

हिमालय पर्वत क्षेत्र जिसमें जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, अरुणाचल आदि राज्य शामिल है वहां जल संचय की एक प्रणाली "कुहल" है। यह प्रणाली नहरी तंत्र की तरह ही विकसित की गई है। इससे हिमनदी का पिछला पानी बहकर तालाबों म संचित होता है। लद्दाख क्षेत्र में ऐसी अन्य तकनीक 'जिंग' कहलाती है, जिसके मार्फत बर्फ पिघल कर रास्तों के द्वारा गांव में पानी के रूप में पहुंचती है। इनका मुख्य भाग हिमनदो का मुहाना होता है, जहां पानी संरक्षित होता है। इन रास्तों में पानी के रिसाव को रोकने के लिए पत्थर बिछाए जाते हैं, जिसे कल कहा जाता है। पूर्वी हिमालय के दार्जिलिंग में झोरों (झरनों) से सिंचाई की जाती थी। इनसे बांस के पाइपों द्वारा पानी को सीढ़ीदार खेतों तक पहुंचाया जाता है। झोरा विधि को लेप्चा, भोटिया एवं गुरुग लोगों ने जीवित कर रखा है। सिक्किम में पेयजल के लिए झरनों व तालाबों (खोलो) का जल प्रयोग में लिया जाता है। इन तालाबों में बांस के पाइपों से जल पहुंचाया जाता है। पेयजल हेतु घरों के अहाते में जल कुडिया बनाते हैं, जिन्हें खूप कहा जाता है।[5]

उत्तराखंड हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में नौले, धारे, पोखर और ताल आदि जलापूर्ति के संसाधन है। नाले, जिन्हें सीढ़ीदार कुएं भी कहा जा सकता है। ये भूगर्भीय जल स्रोतों से बनते हैं। यहां नदियों का पानी रोक कर बांध बनाने की परंपरा भी बहुत पुरानी है। बंधारा विधि से वाटर हार्वेस्टिंग प्रणाली का विशेष प्रचलन है, जिसमें मकान की ढलानदार छत से बहने वाले वर्षा के जल को किसी जल पात्र में संग्रहित कर किसी बड़े गड्ढे में नालियों के माध्यम से संचित किया जाता है, इसे 'बंधारा विधि' कहते हैं, जिसे आधुनिक काल में 'टॉप रूफ वाटर हार्वेस्टिंग' के नाम से जाना जाता है।[6]

गुजरात के कच्छ के मालधारी घुमंतू लोगों ने मीठे पानी के संग्रहण का एक वैज्ञानिक तरीका 'विरडा' विकसित किया है। कच्छ क्षेत्र में बारिश कम होती है और भूजल खारा है। मालधारी लोग जानते हैं कि मीठे पानी का घनत्व खारे पानी से कम होता है इसलिए सैद्धांतिक तौर पर यह संभव है कि संचित मीठे पानी घने खारे पानी के ऊपर तैरत रखा जा सकता है। इस तरकीब से कच्छ जैसे शुष्क इलाकों में पानी के संकट से निजात मिली है। एक अन्य प्रणाली दक्षिण बिहार में आहन–पइन है। आहर बहते पानी को घेरने वाले आयताकार बांध युक्त क्षेत्र थे जबकि पइन पहाड़ी नदियों के

पानी को खेतों तक पहुंचाने का माध्यम। आहर तीन ओर से जल से घिरी आयताकार आकार में तथा पइन द्वारा जल खेतों तक पहुंचाया जाता था। महाराष्ट्र में अन्य परंपरागत तरीका 'फड़ प्रणाली' है, जिसमें समुद्री ज्वार से आए पानी को खेतों में सिंचाई हेतु बांधों में संरक्षित किया जाता था।[7]

इन सभी परंपरागत जल संचय की प्रणालियों से जल संचय की परंपरा पर बल मिलता है। वर्षा जल का संग्रहण, संरक्षण और समुचित प्रबंधन आवश्यक है। यह एकमात्र विकल्प है जल संकट से बचने का, यह तभी संभव है जब पूरा समाज हमारे परंपरागत स्रोतों को संरक्षण करें। भारतीय संस्कृति में जल को जीवन का आधार माना गया है। यहां तक कि स्वच्छ पानी के अधिकार को जीवन जीने के अधिकार के तहत संरक्षित किया गया है। आवश्यकता है तो मात्र जनभागीदारी की। हमें केवल सरकारी प्रयासों पर आश्रित न रहकर परंपरागत जल स्रोतों को पुनर्जीवित करना होगा। अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब अगला विश्व युद्ध पानी के लिए हो।

संदर्भ

1. एस.के. सरकार, "प्रति बूंद अधिक फसल सिंचाई के लिए जल का दक्षता पूर्वक प्रयोग" कुरुक्षेत्र, नवंबर, 2017
2. निमिष कपूर, "वैज्ञानिक सोच पर खड़ी प्राचीन जल संचय प्रणालियां", कुरुक्षेत्र, नवंबर, 2017
3. वाचस्पति गैरोला "कौटिल्य अर्थशास्त्र, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 2015, पृ. 212
4. मनीष मोहन गोरे, "भारतीय परंपराओं में जल संरक्षण", विज्ञान प्रगति, अगस्त, 2018
5. Hindi.indiawaterportal.org/content/paraacaina-bharat-main/jala-sansaadhana on-kaa-parabandhan 6. himantar.com/traditional-water-harvesting-system-in-variousregionofindia
7. निमिष कपूर, "वैज्ञानिक सोच पर खरी प्राचीन जल संचय प्रणालियां", कुरुक्षेत्र, नवंबर, 2017